International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: **3049-2017**
IJMH 2026; 3(1): 112-116
© 2026 IJMH
www.themultijournal.com
Received: 30-01-2026
Accepted: 17-02-2026
Publish : 18-02-2026

डॉ. सुरेश्वर मेहेर
सहायक आचार्य व मुख्य,
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
राजधानी महाविद्यालय,
भुवनेश्वर (ओड़िशा)

Correspondence:
डॉ. सुरेश्वर मेहेर
सहायक आचार्य व मुख्य,
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
राजधानी महाविद्यालय,
भुवनेश्वर (ओड़िशा)

श्रीजगन्नाथ चेतना के विविध दार्शनिक आयाम

डॉ. सुरेश्वर मेहेर

सारांश :

श्रीजगन्नाथ चेतना भारतीय दार्शनिक परंपरा की एक विशिष्ट और समन्वयात्मक अवधारणा है, जिसमें वेदांत, भक्ति, तंत्र तथा लोक परंपराओं का समावेश दिखाई देता है। यह चेतना ईश्वर को केवल संप्रदायगत या मूर्तिपूजक सीमा में नहीं बाँधती, बल्कि उसे ब्रह्म, ईश्वर और जीव के अभेद संबंध के रूप में प्रस्तुत करती है। दार्शनिक दृष्टि से श्रीजगन्नाथ चेतना अद्वैत और द्वैत के समन्वय का सशक्त उदाहरण है। उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्म की अवधारणा और भक्ति परंपरा के सगुण ईश्वर का भावात्मक स्वरूप, दोनों श्रीजगन्नाथ में एक साथ निहित हैं। विभिन्न भारतीय दार्शनिक संप्रदायों द्वारा प्रतिपादित जीव, जगत् और ब्रह्म विषयक तात्त्विक दर्शन इस चेतना में प्रतिफलित होते हैं । श्रीजगन्नाथ चेतना का सामाजिक पक्ष भी अत्यंत महत्वपूर्ण है । रथयात्रा जैसी परंपराएँ सामाजिक समता, समरसता और मानवतावाद की भावना को सुदृढ़ करती हैं। यह चेतना लोक और शास्त्र, आध्यात्मिकता और सामाजिकता के बीच संतुलन स्थापित करती है। इसके अतिरिक्त, श्रीजगन्नाथ चेतना में सृष्टि, संरक्षण और लय की त्रिविध प्रक्रिया का दार्शनिक संकेत निहित है। श्रीजगन्नाथ चेतना न केवल धार्मिक आस्था का विषय है, बल्कि एक समग्र दार्शनिक दृष्टिकोण के रूप में भारतीय चिंतन परंपरा को गहराई और व्यापकता प्रदान करती है। प्रस्तुत लेख द्वारा श्रीजगन्नाथ चेतना के विविध दार्शनिक आयामों पर विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है ।

कूट शब्द : श्रीजगन्नाथ, चेतना, भारतीय दर्शन, भक्ति, समन्वय, ब्रह्म ।

उपक्रम

भारतीय दर्शन की परम्परा में चेतना को परम तत्त्व माना गया है । उपनिषदों से आरम्भ कर भक्ति आन्दोलन पर्यन्त चेतना के विविध रूप प्रत्यक्ष होते हैं । इसी क्रम में श्रीजगन्नाथ चेतना भारतीय सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परंपरा का एक विशिष्ट आयाम है, जो समस्त सृष्टि को एक सूत्र में बाँधने वाली सार्वभौमिक दृष्टि प्रस्तुत करती है। 'जगन्नाथ' का अर्थ है—जगत के नाथ, अर्थात् वह चेतना जो संपूर्ण विश्व का संचालन, संरक्षण और संतुलन करती है। यह चेतना किसी एक संप्रदाय, जाति या वर्ग तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त मानवता और जीव-जगत के कल्याण की भावना से अनुप्राणित है। जगन्नाथ चेतना में भक्ति, समता और करुणा का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। भगवान जगन्नाथ की मूर्ति-रचना, जिसमें स्पष्ट मानवीय आकृतियों का अभाव है, इस बात का प्रतीक है कि ईश्वर निराकार होते हुए भी साकार अनुभूति में उपस्थित है। यह चेतना सामाजिक भेदभाव को नकारते हुए सबको समान रूप से अपनाती है, जैसा कि रथयात्रा में राजा से लेकर सामान्य जन तक की समान भागीदारी में दिखाई देता है। वास्तव में, जगन्नाथ चेतना जीवन को उत्सव के रूप में स्वीकार करने, दुःख-सुख को समान भाव से देखने और सेवा को साधना मानने की प्रेरणा देती है। यह चेतना मनुष्य को संकीर्णता से उठाकर व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण प्रदान करती है ।

श्रीजगन्नाथ तत्त्व : दार्शनिक विचारणा

समस्त ब्रह्माण्ड के नाथ श्रीजगन्नाथ विश्व के मनीषियों के आध्यात्मिक वलय के केन्द्रबिन्दु स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं। भारतीय दार्शनिक परम्परा में श्रेष्ठ उपास्य देवता के रूप में जगन्नाथ उपासना-जगत् में एक प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हैं। जगन्नाथ चेतना किसी एक संप्रदाय या दर्शन तक सीमित नहीं है। यह भारतीय दर्शन की समन्वयात्मक आत्मा का मूर्त रूप है। 'जगन्नाथ' केवल विष्णु अथवा कृष्ण का नाम नहीं, बल्कि समग्र जगत को धारण करने वाली चेतना का प्रतीक है। यह चेतना धर्म, दर्शन, लोकजीवन और सांस्कृतिक स्मृति—चारों स्तरों पर सक्रिय है। महाप्रभु श्रीजगन्नाथ मानव लीला को परिप्रकाश करने के लिये पुरुषोत्तम क्षेत्र में दारु-विग्रह स्वरूप को प्राप्त हुए हैं। अतः उल्लिखित है-

पुरुषोत्तमाख्यं सुमहत् क्षेत्रं परमपावनम्।
यत्रास्ते दारवतनुः श्रीशो मानुषलीलया॥[i]

मनीषियों की विचारणा में चतुर्वेद के सारस्वरूप भगवान् नारायण दारुरूप को धारण करते हैं। वह ही जगत् के कर्ता हैं, अन्य कोई नहीं। शब्द ब्रह्म और परंब्रह्म के मध्य कोई अन्तर नहीं है। प्रलय के उपरान्त भी सच्चिदानन्दस्वरूप परम्ब्रह्म की स्थिति पूर्ववत् बनी रहती है। परंब्रह्म सृष्टि की पुनः संरचना करने के लिए स्वयं को ही विभिन्न रूपों में विभाजित करते हैं।[ii]

जैसे शब्द और अर्थ का भेद नहीं होता है वैसे ही परंब्रह्म का भेद भी नहीं हो सकता है। वह नित्य, शाश्वत, सत्य, और सनातन हैं। अतः परंब्रह्म साक्षात्स्वरूप से उत्कल भूखण्ड में ,पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र में, महोदधि तट में, नीलाचल पर्वत में, कल्पवृक्ष के समीप रत्नमण्डप में ऋग्वेदस्वरूप श्रीबलभद्र, यजुर्वेदस्वरूप देवी सुभद्रा, सामवेदस्वरूप श्रीजगन्नाथ एवं अथर्ववेदस्वरूप चक्रराज सुदर्शन के रूप में पतित जनों के कल्याण के लिए, उद्धार के लिए दारु-शरीर को धारण कर विराजित हैं।

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम्॥[iii]

स्कन्दपुराण में भी इसी मन्त्र का समान रूप दिखाई देता है।

स एष प्लवते दारु सिन्धोः पारे ह्यपौरुषः।
तमुपास्य दुराराध्यं मुक्तिं याति सुदुर्लभम्॥

अन्यत्र, नीलाद्रिमहोदय में तथा कपिल संहिता आदि ग्रन्थों में भी श्रीजगन्नाथ के इस दारु तत्त्व स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

एवं पुरा जगन्नाथ इन्द्रनीलस्वरूपधृक्।
दारुब्रह्मस्वरूपेण भातीदानीं जगत्पतिः॥[iv]
इन्द्राद्या ऋषयः सर्वे नारादाद्याः महर्षयः।
ब्रह्माज्ञया समायाता दारु-ब्रह्मस्वरूपिणम्॥[v]

श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में भगवान् श्रीजगन्नाथ स्वयं यज्ञनृसिंह के रूप में प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार परंब्रह्म का चतुर्द्धा स्वरूप होते हुए भी अन्ततोगत्वा वह एक ही हैं - यह प्रतिपादित होता है।

अपाणिपादो यवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षु स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥[vi]

इसी उपनिषद् वाक्य के अनुसार वह परम्ब्रह्मरूपी जगन्नाथ हस्त-पाद विहीन होते हुए भी सभी कार्य करने में सक्षम हैं। बिना चक्षु के भी सभी को देख सकते हैं। कर्ण न होते हुए भी भक्तजनों के आर्तनाद को श्रवण कर सभी के मन के अभिलाष को पूर्ण करते हैं। इसी प्रकार बात की पुष्टि करने के लिये रामचरितमानसकार सन्त श्री तुलसी दास भी भगवान् श्रीजगन्नाथ की अलौकिकता का वर्णन करते हुए कहते हैं-

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड जोगी॥
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥[vii]

भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन मात्र से निर्गुण में सगुण का, निराकार में साकार की भावना उद्रेक हो जाती है। वह ही सहस्रशिरविशिष्ट परंब्रह्म रूप में सभी लोकों का परिपालन करते हैं एवं स्वयं को जीव रूप में संचालित करते हैं। स्कन्दपुराण में उल्लेख है-

सर्वरूपमयो ह्येषः सर्वमन्त्रमयः प्रभुः।
आराध्यते यथा येन तथा तस्य फलप्रदः॥[viii]

जगद्गुरु आदि शंकराचार्य श्रीजगन्नाथाष्टक में कहते हैं-

परंब्रह्मापीडः कुवलय-दलोत्फुल्ल-नयनो
निवासी नीलाद्रौ निहितचरणोऽनन्तशिरसि।
रसानन्दी राधा-सरस-वपुरालिङ्गन-सुखो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥[ix]

स्कन्दपुराण के अनुसार भगवान् जगन्नाथ सकल मन्त्रों के मूलतत्त्व हैं। चतुर्द्धामूर्त्ति कदा प्रभृति उपासित हो रहे थे, उस विषय में शास्त्र तूष्णी रहते हैं। पुराणों में चतुर्द्धामूर्त्ति की उपासना अनन्तकाल से ही हो रही है- ऐसा कथन है। ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण एवं पाञ्चरात्र विधान में इसी परम चेतना ब्रह्मस्वरूप जगन्नाथ को भिन्न भिन्न रूप में दर्शाया गया है। विष्णुपुराण में उल्लिखित है-

नमः वासुदेवाय नमः शंकर्षणाय च।
प्रद्युम्नाय नमस्तुभ्यमनिरुद्धाय ते नमः॥[x]

ब्रह्मपुराण में भी वर्णन है-

बलभद्रः जगन्नाथः सुभद्रा च सुदर्शनः।
दारुब्रह्मस्वरूपाय चतुर्द्धामूर्त्तये नमः॥

पाञ्चरात्र विधान में पुरुषोत्तम, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध आदि अनेक नाम प्राप्त होते हैं। यहाँ प्रतिपादित वासुदेव शब्द भगवान् श्रीजगन्नाथ के लिये प्रयोग किया गया है। उत्कलीय विद्वान् दिवाकर दास के मतानुसार श्रीजगन्नाथ के नित्य अर्चन में प्रयुक्त विविध मन्त्रों में आद्य अक्षर में चतुर्धामूर्त्ति स्थानित हैं। यथा-

ॐकार सुदर्शन देव, ह्रींबीज बलभद्र भाव।

श्रींबीज सुभद्रासुमति, क्लीं बीज जगन्नाथमूर्त्ति॥

पुनश्च स्कन्दपुराण के उत्कलखण्ड में श्रीजगन्नाथ को योगविद्या का गुह्यसिंह के रूप में प्रतिपादित किया गया है।

नमस्ते तु योगगुह्यैव सिंहः।

पुनश्च भगवान् जगन्नाथ को त्रितत्त्वसंयुक्त ॐकार का प्रतीक भी शास्त्रों मे स्वीकार किया गया है।

बलभद्रः कुण्डली च जगन्नाथस्तु दण्डकम् ।
तारकं सुभद्रिका ज्ञेया अर्द्धमात्रा सुदर्शनम् ॥
रत्नसिंहासनं बिन्दुः पञ्चतत्त्वसमीरितम् ॥

अर्थात् ॐकार प्रणव में भगवान् बलभद्र कुण्डली स्वरूप हैं, जगन्नाथ दण्ड स्वरूप हैं, तारक देवी सुभद्रा हैं, अर्द्धमात्रा सुदर्शन हैं तथा रत्नसिंहासन बिन्दु हैं - इसी प्रकार का मत विद्वज्जनों का है । अतः प्रणव पञ्चतत्त्व से विशिष्ट होते हुए भी **"अ उ म"** - तीन अक्षरों से विशिष्टता को प्राप्त करते हैं । कहा गया है-

यो दारुब्रह्ममूर्त्तिः प्रणवतनुधारः सर्ववेदान्तसारः
भक्तानां कल्पवृक्षः भवजलतरणि सर्वतत्त्वानुतत्त्वम् ।
सिद्धानां योगमूर्त्तिः हरिहरनमितश्रीपतिर्वैष्णवानाम्
शैवानां भैरवो यः सततं सुविदितः शाक्ततत्त्वे च शक्तिः ॥
बौद्धानां बुद्धमूर्त्ति ऋषभमुनिवरजैनसिद्धान्तसारः
सोऽयं नीलाद्रिनाथः जगति विजयते सर्वधर्मप्रतीकः ॥[xi]

उसी चेतना की सर्वोच्च सत्ता श्रीजगन्नाथ को श्रीमद्भगवद्गीता में भी स्पष्टतः निम्न प्रकार से उल्लेख किया गया है -

यस्मात् क्षरमतीतोऽहं अक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥[xii]

ब्रह्म की अवधारणा : सगुण-निर्गुण द्वैत का अतिक्रमण

उपनिषदों में ब्रह्म को कभी निर्गुण (निराकार) तो कभी सगुण (साकार) बताया गया है। जगन्नाथ चेतना इन दोनों का अतिक्रमण करती है क्योंकि जगन्नाथ न पूर्ण मानवाकृति हैं और ही शुद्ध अमूर्त तत्व । उनकी आकृति दार्शनिक संकेत है, जो यह बताती है कि—ब्रह्म को पूरी तरह रूप में बाँधा नहीं जा सकता । यह अवधारणा निराकारवाद की शुष्कता और साकारवाद की सीमाओं दोनों से आगे जाती है अथवा यूँ कहें दोनों साकार-निराकार स्वरूप की सम्मिश्रित अभिव्यक्ति है ।

अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत का समन्वय

जगन्नाथ चेतना भारतीय दर्शन परम्परा में किसी एक दर्शन संप्रदाय की अनुकृति नहीं, बल्कि दार्शनिक संवाद है जिसमें सभी प्रकार के वाद अन्तर्भावित हो जाते हैं । मुख्यतः अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद तथा अचिन्त्य भेदाभेदवाद का सम्मिलित रूप श्रीजगन्नाथ चेतना में प्रकट होते हैं ।

अद्वैतवाद के महान् प्रतिष्ठापक आचार्य शंकर के ब्रह्म-एकात्मवाद **(एकमेवाद्वितीयम्, सर्वं खल्विदं ब्रह्म)**- जिसमें ब्रह्म एक है तथा जीव और ब्रह्म में अंतिम भेद नहीं **(जीवो ब्रह्मैव नापरः)**- इस विचार का पोषण किया गया है । यह मत जगन्नाथ चेतना का मूल स्वरूप है क्योंकि जगन्नाथ ही सर्व जगत् के अधिष्ठान हैं, उन्हींसे ही समस्त चराचर जगत् प्रादुर्भूत और तिरोभूत होते हैं **(जन्माद्यस्य यतः, ब्र.सू. २)**।

विशिष्टाद्वैत मत के प्रवर्तक आचार्य रामानुज के मतानुसार- जीव ब्रह्म का अंश है और जीव का ईश्वर के साथ प्रेमपूर्ण संबंध बना रहता है । इससे सूचित होता है कि यद्यपि सर्वोच्च चेतना ब्रह्म निज-स्वरूप में अद्वैत ही है, परन्तु जीवात्मा उसका अंशविशेष होने के कारण स्वयं का विशिष्ट स्थान प्राप्त करता है, फिर भी मूल तत्त्व से सदा असम्पृक्त नहीं । यह विचार भी जगन्नाथ चेतना में एक विशेष स्थान वहन करता है जिसमें जीवात्मा श्रीजगन्नाथ का अंश होते हुए भी उनसे अभिन्न है ।

पुनश्च द्वैतवाद के संस्थापक आचार्य माध्व के कथनानुसार -ईश्वर और भक्त भिन्न हैं तथा भक्ति सर्वोपरि है । भक्त जब भी ईश्वर को स्मरण करता है ईश्वर उसकी भक्ति के अनुरूप दर्शन देते हैं व फल प्रदान करते हैं । यह भाव भी श्रीजगन्नाथ चेतना का अंगभूत है क्योंकि श्रद्धालु भक्त नित-प्रतिदिन अपने दुःखों को दूर करने हेतु भगवान् श्रीजगन्नाथ की स्तुति, अर्चना, वन्दना आदि नवविधात्मिका भक्ति का आधार लेते हैं । अतः भक्त और भगवान में अन्तर भी स्पष्ट रीति से झलकता है और द्वैत भावना को सर्जित करता है ।

पुनश्च श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रतिपादित अचिन्त्य भेदाभेद दर्शन इस जगन्नाथ चेतना का प्रमुख दार्शनिक आधार है । जिसके अनुसार जीव और ब्रह्म में भेद और अभेद दोनों एक साथ विद्यमान हैं । अर्थात् जीव ब्रह्म है और ब्रह्म से पृथक् भी । जगन्नाथ चेतना में इसी प्रकार भी भावना स्पष्ट गोचर होती है जिसमें मनुष्य जीव स्वयं को भगवान् जगन्नाथ से भिन्न स्वीकार करता है तथा जब साधना के मार्ग पर चलकर ब्रह्मानुभूति कर लेता है तो जगन्नाथ रूपी अद्वैत स्वरूप को प्राप्त करता है ।

अतः श्रीजगन्नाथ चेतना में अद्वैत-द्वैत-विशिष्टाद्वैत-अचिन्त्यभेदाभेद रूपी अनेक भावों का समावेश सहज रूप से हो जाता है । अर्थात् भक्ति में द्वैत, अनुभूति में अद्वैत और सामाजिक जीवन में विशिष्टाद्वैत दिखाई देता है । अतः ज्ञान, कर्म, भक्ति का समन्वित दर्शन श्रीजगन्नाथ चेतना को अधिक पल्लवित करता है ।

पुनश्च समस्त दार्शनिक संप्रदायों की निज-निज अभीष्ट सर्वोच्च पारमार्थिक सत्ता का एकीकरण श्रीजगन्नाथ चेतना में प्रदर्शित होता है । अतः कहा गया है-

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैमितिशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधाति वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

शैव दार्शनिक संप्रदाय में परम चेतना के रूप में शिव को स्वीकार किया जाता है जिससे भी समग्र जगत् प्रकाशित व आभासित है । अपनी ज्ञान-क्रिया-आनन्द शक्ति के द्वारा समस्त जगत् का सर्जन व तिरोभावन करते हैं । जगत् परम चेतन शिवमय ही है। वेदान्त दर्शन उसी परम चेतन्य सत्ता को ब्रह्म की आख्या प्रदान करता है जिससे समस्त सृष्टि प्रादुर्भूत है । पुनश्च बौद्ध दार्शनिक संप्रदाय बुद्ध अर्थात् परा संवित् अर्थवा शून्य रूप से अभिव्यक्त करते हैं । न्याय दर्शन संपूर्ण संसार का निर्माणकर्ता के रूप में ईश्वर को स्वीकार करता है । जैन दार्शनिक परम्परा में उसी चेतना को अर्हत् अर्थात् सर्वज्ञ रीति में प्रकट किया गया है । मीमांसा दर्शन कर्मकाण्डप्रधान होने से 'कर्म' को ही श्रेष्ठ सत्ता के रूप में अंगीकार करता है । इसी प्रकार भारतीय दार्शनिक परम्परा में उस जगत् के मूल कारण को विविध रूपों में प्रदर्शित किया गया है । वस्तुतः सत्ता एक ही है, परन्तु दृष्टिकोण अनुसार स्वरूप की परिकल्पना भिन्न-भिन्न रूप में की गई है । श्रीजगन्नाथ चेतना इन्हीं समस्त दार्शनिक आयामों का सार है

क्योंकि जगन्नाथ में सभी प्रकार के रूपों का, भावों का समन्वय होता है। इसलिये श्रीजगन्नाथ तत्त्व में सभी संप्रदाय के विद्वान् एक मत से परम दिव्य चेतना का आभास प्रकटित करते हैं।

भक्ति का लोकतांत्रिक दर्शन

जगन्नाथ चेतना का सबसे क्रांतिकारी पक्ष है- भक्ति का लोकतंत्रीकरण। इसमें रथयात्रा का दार्शनिक अर्थ प्रतिफलित होता है। रथयात्रा में भगवान मंदिर से बाहर आते हैं, राजपथ **(बड़दाण्ड)** पर सामान्य जन के बीच रहते हैं, गजपति राजा स्वयं सेवक बनते हैं **(छेरा पहँरा)**। यह दर्शन कहता है ईश्वर सत्ता के केंद्र में नहीं, जन के हृदय में निवास करता है। ईश्वर अथवा भगवान् समस्त प्राणी जन के लिए हैं। कोई बड़ा-छोटा नहीं है, सभी भगवान् के भक्त समान हैं और सभी मनुष्य उनकी कृपा, करुणा, आशीर्वाद प्राप्त करने का समान अधिकार रखते हैं। यह जगन्नाथ परंपरा जातिवाद, ब्राह्मणवादी आधिपत्य, आध्यात्मिक एकाधिकार का मौन प्रतिवाद है। पुनश्च जगन्नाथ परम्परा में श्रीजगन्नाथ स्वयं राजा नहीं हैं, न ही दंडदाता तथा भय का स्रोत भी नहीं हैं। बल्कि आर्त-दुःखियों के सखा, पालक और करुणामय चेतना हैं। यह दर्शन मानवीय संबंधों में ईश्वर की उपस्थिति को रेखांकित करता है। यहाँ ईश्वर दूर नहीं, संवाद में है। अतः जगन्नाथ चेतना में करुणा, सखा-भाव और मानवीकरण को प्रमुख स्थान दिया गया है।

नवकलेवर में दार्शनिकता :

श्रीजगन्नाथ चेतना में नव-कलेवर केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि गहन दार्शनिक प्रतीक का द्योतक है। यद्यपि भगवान् जगन्नाथ जन्म-मरण चक्र से परे हैं, तथापि मनुष्य को संसार में परिवर्तनशीलता का ज्ञान-दर्शन प्रदान करने के लिए इसी प्रकार की लीला का प्रारम्भ करते हैं। नवकलेवर के माध्यम से श्रीजगन्नाथ संसार के प्राणिओं को यह सूचना देते हैं कि काष्ठ मूर्ति नश्वर है, चेतना केवल अविनाशी है; शरीर अनित्य है और चेतना नित्य। अतः यह नवकलेवर ईश्वरीय लीला के माध्यम से समस्त सृष्टि को इस प्रकार का दार्शनिक सन्देश देता है कि मनुष्य स्वयं को नित्य चैतन्य आत्मा, ईश्वर का दिव्य शाश्वत अंश समझकर उचित कार्य में तत्पर रहना चाहिये। साथ-साथ परिवर्तनशील संसार में सर्वदा विद्यमान रहने का मिथ्या ज्ञान कदापि नहीं करना है। दार्शनिक विचारों को प्रकटित करने वाले ग्रन्थ शिरोमणि श्रीमद्भवद्गीता में यह भाव स्पष्ट रूप में प्रदर्शित है-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥[xiii]

यह दर्शन मनुष्य को मृत्यु-भय से मुक्त करता है तथा परिवर्तन को स्वीकारना सिखाता है।

आनंद दर्शन : उत्सव के माध्यम से मोक्ष

भारतीय दार्शनिक विचार में मोक्ष को अन्तिम लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया है और उसी उद्देश्य की कामना से मनुष्य सतत प्रयत्न करता रहता है। अनेक जन्मों के उपरान्त श्रेष्ठ कर्मों के फल स्वरूप, ईश्वर की अनुकम्पा से मुक्ति पद की प्राप्ति होती है। जीवन के जंजालों को त्याग कर, ममत्त्व को त्याग कर इस लक्ष्य की सिद्धि की जाती है। परन्तु श्रीजगन्नाथ चेतना में मोक्ष त्याग से नहीं, पलायन से नहीं: बल्कि आनंद, सेवा और सहभागिता से प्राप्त होता है। पवित्र महाप्रसाद भोग का सेवन करने से, जगन्नाथ के भजन-कीर्तन करने से तथा जगन्नाथ महाप्रभु के विभिन्न उत्सवों मे भाग लेने पर भी मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। अतः यहां

महाप्रसाद = समानता का दर्शन, कीर्तन = सामूहिक चेतना, उत्सव= जीवन की स्वीकृति का परिचायक है।

यह दर्शन जीवन-निषेध नहीं, बल्कि जीवन-समर्थन का सार्थक निदर्शन है।

सामाजिक दर्शन :

जगन्नाथ चेतना मानव-मानव, मानव-प्रकृति, परंपरा-आधुनिकता के बीच संतुलन सिखाती है। यह दर्शन आज के समय में सामाजिक विखंडन, धार्मिक कट्टरता, सांस्कृतिक अलगाव का दार्शनिक समाधान प्रस्तुत करता है। सह-अस्तित्व और समरसता का मन्त्र इसमें दृष्टिगोचर होता है। संसार में समस्त प्राणी परस्पर सहयोग और स्नेह से अवस्थित रहने का प्रयास करना चाहिये। श्रीजगन्नाथ के मन्दिर में रत्नसिंहासन में अवस्थित अग्रज श्रीबलभद्र, श्रीजगन्नाथ तथा अनुजा देवी सुभद्रा का एकत्र सहावस्थान एक उत्तम पारिवारिक तथा सामाजिक मूल्य को अभिसूचित करता है। जहाँ प्रेम हो, सद्भाव, शुभकामना हो वहाँ सह-अस्तित्व व समरसता स्पष्ट रूप में झलकती है। भक्त जनों के एकत्र आनन्द बाजार में भोजन करना, सामाजिक सन्तुलन का श्रेष्ठ निदर्शन है। ईश्वर के धाम में सभी समान हैं, परिवार की समुचित भावना यहाँ परिलक्षित होती है। जीवन पर्यन्त मनुष्य अपने एक ही परिवार के अन्दर रहकर संकीर्णता से केवल अपने लोगों के लिये ही सोचता है, कार्य करता है। परन्तु जगन्नाथ का परिवार संपूर्ण विश्व है। **वसुधैव कुटुम्बकम्** की उच्च भावना को चरितार्थ करने का सफल रूपायन इसी दार्शनिक जगन्नाथ परम्परा में दिखता है। अतः विभिन्नता में एकता का मन्त्र लिए हुए यह जगन्नाथ चेतना विश्वव्यापकता का दिग्दर्शन कराती है।

निष्कर्ष

इस प्रकार श्रीजगन्नाथ चेतना के दार्शनिक आयाम भारतीय दर्शन की समन्वयात्मक, लोकमंगलकारी और सार्वभौमिक दृष्टि को सशक्त रूप में प्रस्तुत करते हैं। जगन्नाथ चेतना न तो केवल किसी एक संप्रदाय, मत या दर्शन तक सीमित है और न ही यह विशुद्ध धार्मिक आस्था मात्र है, बल्कि यह जीवन, जगत और चेतना की समग्र व्याख्या प्रदान करती है। जगन्नाथ चेतना दर्शन है, संस्कृति है, जीवन दृष्टि है। इसमें अद्वैत की एकत्व भावना, भक्ति की आत्मीयता, कर्म की सामाजिक प्रतिबद्धता तथा लोकाचार की सहजता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। जगन्नाथ को सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार और लौकिक-आध्यात्मिक के सेतु के रूप में देखा जा सकता है। दार्शनिक दृष्टि से जगन्नाथ चेतना मानव को भेद, अहंकार और

संकीर्णताओं से ऊपर उठाकर समता, करुणा और सहअस्तित्व की ओर प्रेरित करती है। रथयात्रा जैसे प्रतीकात्मक आयोजनों के माध्यम से यह दर्शन समाज में समानता और सहभागिता के भाव को प्रतिष्ठित करता है। समकालीन वैश्विक संदर्भ में, जहाँ मानवता विभाजन, हिंसा और भौतिकतावाद से जूझ रही है, जगन्नाथ चेतना एक ऐसी जीवन-दृष्टि प्रदान करती है जो आध्यात्मिक गहराई के साथ सामाजिक समरसता और मानवीय मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित कर सकती है। अतः जगन्नाथ चेतना न केवल भारतीय दर्शन की अमूल्य धरोहर है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी एक सार्थक दार्शनिक मार्गदर्शन प्रस्तुत करती है।

पादटिप्पणी

I. स्कन्द.

II. एकोऽहं बहु स्याम।
ततो विराडजायत विराजः अधिपूरुषः। (ऋग्. फुरुषसूक्त)

III. ऋ. १०/१५५/३

IV. कपिल. ४/३१

V. नीलाद्रि. ५/१

VI. श्वेता. ३/१९

VII. रामचरित. १/१/११८

VIII. स्कन्द. २८/४८

IX. जगन्नाथाष्टकम्, ७

X. विष्णु. ५/१८/५८

XI. श्रीक्षेत्रसारघम्. पृ. २७

XII. गीता. १५/१८

XIII. गीता. २/२२

सहायकग्रन्थसूची

1. स्कन्दपुराण, उत्कलखण्ड, गीता प्रेस, गोरखपुर, २००२
2. श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रमाहात्म्यम्, उत्कलभाषादुवादसहित, अनु. पूज्य बबा चैतन्य चरण दास महाराज, श्रीजगन्नाथ मन्दिर प्रशासन, श्रीजगन्नाथ धाम, पुरी, ओड़िशा, २०१८
3. ईशादि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, १९९८
4. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, २०००
5. रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, १९९८
6. मिश्र, जगदीशचन्द्र, वैदिक साहित्य का इतिहास, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९९५
7. टण्डन, किरन कुमार, भारतीयसंस्कृति, इष्टर्न बुक् लिंकर्स, दिल्ली, २००२
8. श्रीक्षेत्रसारघम्, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, श्रीसदाशिव परिसर, पुरी, ओड़िशा, २००५
9. स्तोत्ररत्नावली, श्रीजगन्नाथाष्टकम्, गीता प्रेस, गोरखपुर. २०१२
10. शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन : आलोचना और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९९८
11. दाश, सूर्यनारायण, जगन्नाथ मन्दिर ओ जगन्नाथ तत्त्व, फ्रेण्डस् पब्लिशर्स, विनोदबिहारी, कटक, ओड़िशा, २०१०